# पंचतंत्र

## नैतिक कहानियां

# पंचतंत्र

## नैतिक कहानियां

सच्चाई, ईमानदारी और न्याय की ओर प्रेरित करने वाली नैतिक कहानियों का अनूठा संग्रह।

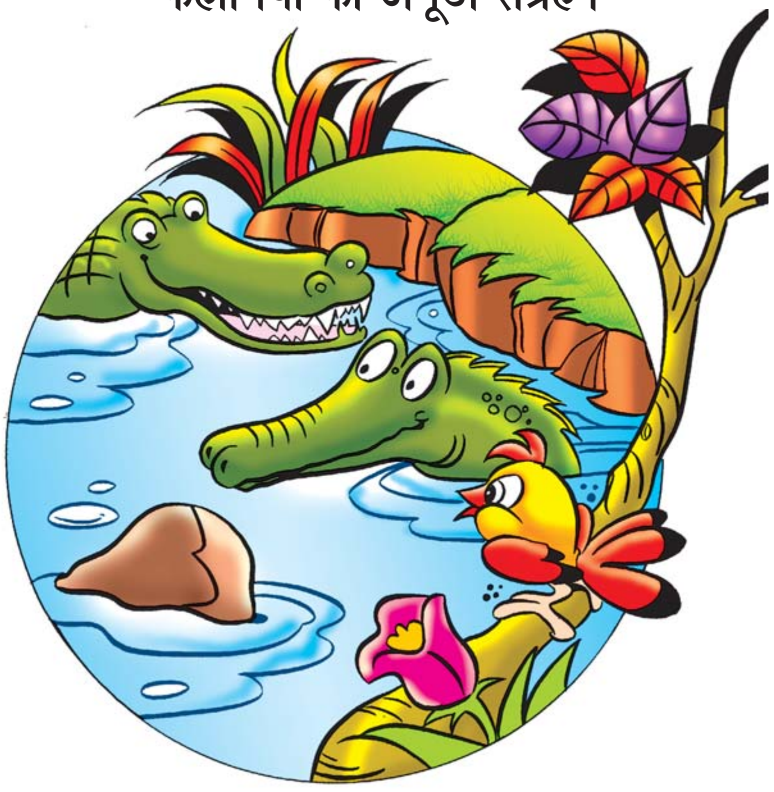


संकलनकर्ता : **भरत नेगी**

चित्रांकन: **हरविन्दर मांकड़**



**राजा पॉकेट बुक्स**

**330/1, बुराड़ी, दिल्ली—110084**

# कहानी क्रम

- बिल्ली का न्याय 03
- मूर्ख को सीख 08
- बंदर का कलेजा 10
- झगड़ालू मेढक 17
- रंग में भंग 21
- मक्खीचूस गीदड़ 25
- गजराज व मूषकराज 28
- विष्णुरूपी जुलाहा 32
- भाग्य का फल 37

● पंचतंत्र–नैतिक कहानियां : भरत नेगी


© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन


ISBN : 81-7604-616-7
**प्रकाशक : राजा पॉकेट बुक्स**
330/1, मेन रोड, बुराड़ी, दिल्ली–110084
फोन : 27611410, 27612036, 27611038
फैक्स : 27611227 ई–मेल : rajam@nda.vsnl.net.in

**शोरूम (होलसेल व रिटेल बिक्री केंद्र) :**
**राजा पॉकेट बुक्स**
112, फर्स्ट फ्लोर, दरीबा कलां, दिल्ली–6
फोन : 23251092, 23251109
**मुद्रक :** प्रिंस प्रिंट प्रोसेस
A-60/1, आजादपुर, दिल्ली - 110033
**मूल्य :** 30/-

# बिल्ली का न्याय

एक वन में एक पेड़ की खोह में एक चकोर रहता था। उसी पेड़ के आस-पास कई पेड़ और थे, जिनपर फल व बीज उगते थे। उन फलों और बीजों से पेट भरकर चकोर मस्त पड़ा रहता। इसी प्रकार कई वर्ष बीत गए। एक दिन उड़ते-उड़ते एक और चकोर सांस लेने के लिए उस पेड़ की टहनी पर बैठा। दोनों में बातें हुईं। दूसरे चकोर को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि वह केवल पेड़ों के फल व बीज चुगकर जीवन गुजार रहा था। दूसरे चकोर ने उसे बताया—“भई, दुनिया में खाने के लिए केवल फल और बीज ही नहीं होते और भी कई स्वादिष्ट चीजें हैं। उन्हें भी खाना चाहिए। खेतों में उगने वाले अनाज तो बेजोड़ होते हैं। कभी अपने खाने का स्वाद बदलकर तो देखो।”

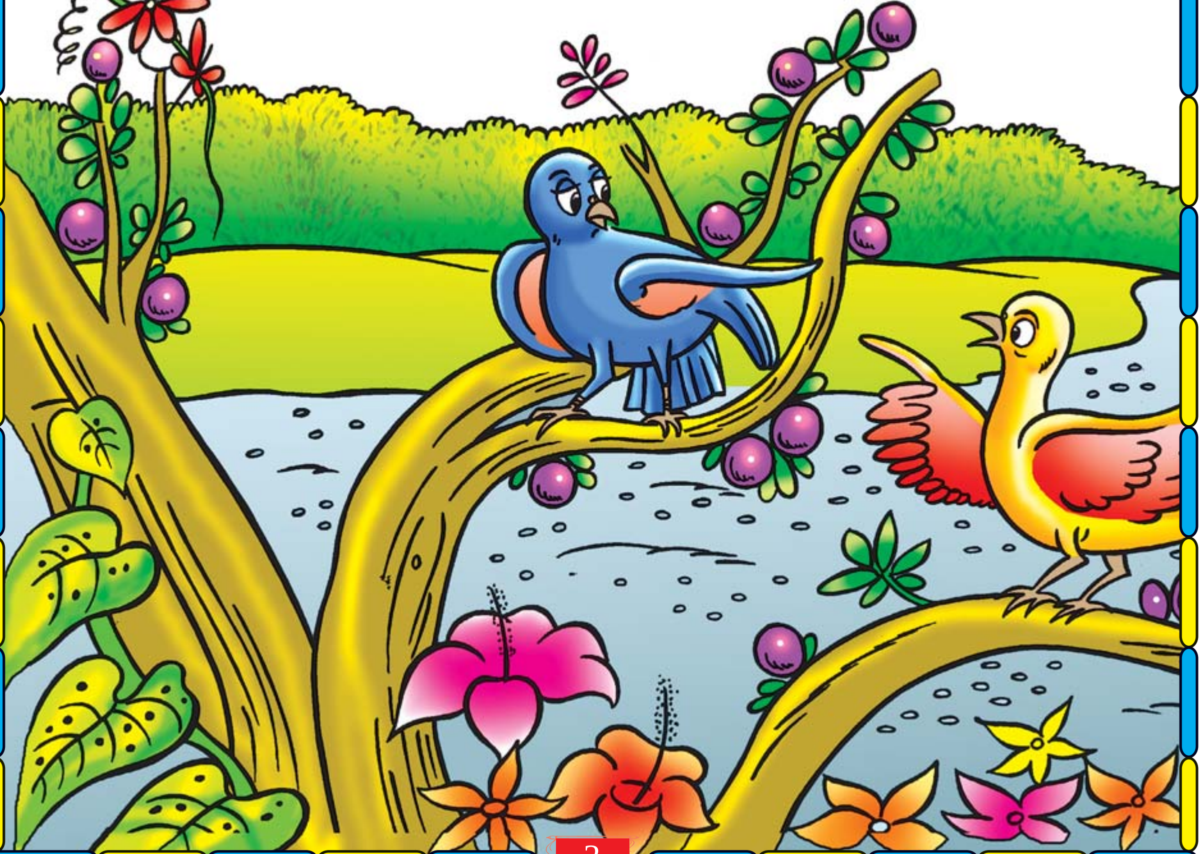

दूसरे चकोर के उड़ने के बाद वह चकोर सोच में पड़ गया। उसने फैसला किया कि कल ही वह दूर नजर आने वाले खेतों की ओर जाएगा और उस अनाज नाम की चीज का स्वाद चखकर देखेगा। दूसरे दिन चकोर उड़कर एक खेत के पास उतरा। खेत में धान की फसल उगी थी। चकोर ने कोंपलें खाईं। उसे वह अति स्वादिष्ट लगीं। उस दिन के भोजन में उसे इतना आनंद आया कि खाकर तृप्त होकर वहीं आंखें मूंदकर सो गया। इसके बाद भी वह वहीं पड़ा रहा। रोज खाता-पीता और सो जाता। छः-सात दिन बाद उसे सुध आई कि घर लौटना चाहिए। इस बीच एक खरगोश घर की तलाश में घूम रहा था। उस इलाके में जमीन के नीचे पानी भरने के कारण उसका बिल नष्ट हो गया था। वह उसी चकोर वाले पेड़ के पास आया और उसे खाली पाकर उसने उसपर अधिकार जमा लिया और वहां रहने लग गया। जब चकोर वापस लौटा तो उसने पाया कि उसके घर पर तो किसी और का कब्जा हो गया है। चकोर क्रोधित होकर बोला—"ऐ भाई, तू कौन है और मेरे घर में क्या कर रहा है?"

खरगोश ने दांत दिखाकर कहा—"मैं इस घर का मालिक हूं। मैं सात दिन से यहां रह रहा हूं। यह घर मेरा है।"

चकोर गुस्से से फट पड़ा—"सात दिन! भइए, मैं इस खोह में कई वर्षों से रह रहा हूं। किसी भी आस-पास के पंछी या चौपाए से पूछ ले।"

खरगोश चकोर की बात काटता हुआ बोला—"सीधी-सी बात है। मैं यहां आया। यह खोह खाली पड़ी थी और मैं यहां बस गया। मैं क्यों अब पड़ोसियों से पूछता फिरूं?"

चकोर गुस्से में बोला—"वाह! कोई घर खाली मिले तो क्या इसका यह मतलब हुआ कि उसमें कोई नहीं रहता? मैं आखिरी बार कह रहा हूं कि शराफत से मेरा घर खाली कर दे वर्ना...।"

खरगोश ने भी उसे ललकारा—"वर्ना तू क्या कर लेगा? यह घर मेरा है। तुझे जो करना है, कर ले।"

चकोर सहम गया। वह मदद और न्याय की फरियाद लेकर पड़ोसी जानवरों के पास गया सबने दिखावे की हूं-हूं की, परंतु ठोस रूप से कोई सहायता करने सामने नहीं आया। एक बूढ़े पड़ोसी ने कहा—"ज्यादा झगड़ा बढ़ाना ठीक नहीं होगा। तुम दोनों आपस में कोई समझौता कर लो।"

पर समझौते की कोई सूरत नजर नहीं आ रही थी, क्योंकि खरगोश किसी शर्त पर खोह छोड़ने को तैयार नहीं था। अंत में लोमड़ी ने उन्हें सलाह दी—"तुम दोनों किसी ज्ञानी-ध्यानी को पंच बनाकर अपने झगड़े का फैसला उससे करवाओ।"

दोनों को यह सुझाव पसंद आया। अब दोनों पंच की तलाश में इधर-उधर घूमने लगे। इसी

प्रकार घूमते-घूमते वे दोनों एक दिन गंगा किनारे आ निकले। वहां उन्हें जप-तप में मग्न एक बिल्ली नजर आई।

बिल्ली के माथे पर तिलक था। गले में जनेऊ और हाथ में माला लिए मृगछाल पर बैठी वह पूरी तपस्विनी लग रही थी। उसे देखकर चकोर व खरगोश खुशी से उछल पड़े। उन्हें भला इससे अच्छा ज्ञानी-ध्यानी कहा मिलेगा। खरगोश ने कहा—"चकोर जी, क्यों न हम इससे अपने झगड़े का फैसला करवाएं?"

चकोर पर भी बिल्ली का अच्छा प्रभाव पड़ा था। पर वह जरा घबराया हुआ था। चकोर बोला—"मुझे कोई आपत्ति नहीं है। पर हमें जरा सावधान रहना चाहिए।"

खरगोश पर तो बिल्ली का जादू चल गया था। उसने कहा—"अरे नहीं। देखते नहीं हो, यह बिल्ली सांसारिक मोह-माया त्यागकर तपस्विनी बन गई है।"

सच्चाई तो यह थी कि बिल्ली उन जैसे मूर्ख जीवों को फांसने के लिए ही भक्ति का नाटक कर रही थी। फिर चकोर और खरगोश पर और प्रभाव डालने के लिए वह जोर-जोर से मंत्र पढ़ने लगी। खरगोश और चकोर ने उसके निकट आकर हाथ जोड़कर जयकारा लगाया—"जय माता दी। माता को प्रणाम।"

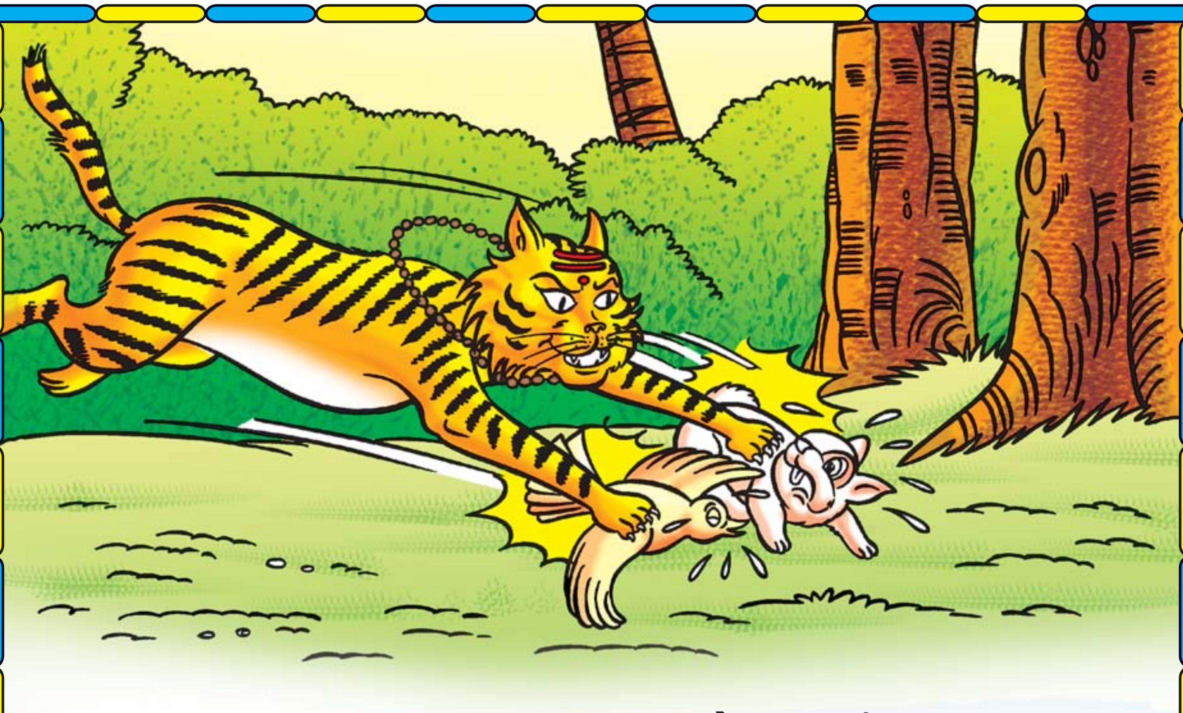

बिल्ली ने मुस्कराते हुए धीरे से अपनी आंखें खोलीं और आशीर्वाद दिया——"आयुष्मान भव, तुम दोनों के चेहरों पर चिंता की लकीरें हैं। क्या कष्ट है तुम्हें, बच्चो?"

चकोर ने विनती की——"माता हम दोनों के बीच एक झगड़ा है। हम चाहते हैं कि आप उसका फैसला करें।"

बिल्ली ने पलकें झपकाईं——"हरे राम, हरे राम! तुम्हें झगड़ना नहीं चाहिए। प्रेम और शांति से रहो।" उसने उपदेश दिया और बोली——"खैर, बताओ, तुम्हारा झगड़ा क्या है?"

चकोर ने मामला बताया। खरगोश ने अपनी बात कहने के लिए मुंह खोला ही था कि बिल्ली ने पंजा उठाकर उसे रोका और बोली——"बच्चो, मैं काफी बूढ़ी हूं। ठीक से सुनाई नहीं देता। आंखें भी कमजोर हैं। इसलिए तुम दोनों मेरे निकट आकर मेरे कान में जोर से अपनी-अपनी बात कहो ताकि मैं झगड़े का कारण जान सकूं और तुम दोनों को न्याय दे सकूं। जै सियाराम।"

वे दोनों भगतिन बिल्ली के बिल्कुल निकट आ गए ताकि उसके कानों में अपनी-अपनी बात कह सकें। बिल्ली को इसी अवसर की तलाश थी। उसने 'म्याऊं' की आवाज लगाई और एक ही झपट्टे में खरगोश और चकोर का काम तमाम कर दिया। फिर वह आराम से उन्हें खाने लगी।

**सीखः दो के झगड़े में तीसरे का ही फायदा होता है, इसलिए झगड़ों से दूर रहो।**

# मूर्ख को सीख

एक जंगल में एक पेड़ पर गौरैया का घोंसला था। एक दिन कड़ाके की ठंड पड़ रही थी। ठंड से कांपते हुए तीन-चार बंदरों ने उसी पेड़ के नीचे आश्रय लिया। एक बंदर बोला—"कहीं से आग तापने को मिले तो ठंड दूर हो सकती है।"

दूसरे बंदर ने सुझाया—"देखो, यहां कितनी सूखी पत्तियां गिरी पड़ी हैं। इन्हें इकट्ठा कर हम ढेरी लगाते हैं और फिर उसे सुलगाने का उपाय सोचते हैं।"

बंदरों ने सूखी पत्तियों का ढेर बनाया और फिर गोल दायरे में बैठकर सोचने लगे कि ढेरी को कैसे सुलगाया जाए। तभी एक बंदर की नजर दूर हवा में उड़ते एक जुगनू पर पड़ी और वह उछल पड़ा। उधर ही दौड़ता हुआ चिल्लाने लगा—"देखो, हवा में चिंगारी

उड़ रही है। इसे पकड़कर ढेरी के नीचे रखकर फूंक मारने से आग सुलग जाएगी।"

"हां हां!" कहते हुए बाकी बंदर भी उधर दौड़ने लगे। पेड़ पर अपने घोंसले में बैठी गौरैया यह सब तमाशा देख रही थी। उससे चुप न रहा गया। वह बोली—"बंदर भाइयो, यह चिंगारी नहीं है। यह तो जुगनू है।"

एक बंदर क्रोध से गौरैया की ओर देखकर गुर्राया—"मूर्ख चिड़िया, चुपचाप घोंसले में दुबकी रह। हमें सिखाने चली है।"

इस बीच एक बंदर उछलकर जुगनू को अपनी हथेलियों के बीच कटोरा बनाकर कैद करने में सफल हो गया। जुगनू को ढेरी के नीचे रख दिया गया और सारे बंदर लगे चारों ओर से ढेरी में फूंक मारने। गौरैया ने सलाह दी—"भाइयो! आप लोग गलती कर रहे हैं। जुगनू से आग नहीं सुलगेगी। दो पत्थरों को टकराकर उससे चिंगारी पैदा करके आग सुलगाइए।"

बंदरों ने गौरैया को घूरा। आग नहीं सुलगी तो गौरैया फिर बोल उठी—"भाइयो! आप मेरी सलाह मानिए, कम से कम दो सूखी लकड़ियों को आपस में रगड़कर देखिए।" सारे बंदर आग न सुलगा पाने के कारण खीजे हुए थे। एक बंदर क्रोध से भरकर आगे बढ़ा और उसने गौरैया को पकड़कर जोर से पेड़ के तने पर दे मारा। गौरैया फड़फड़ाती हुई नीचे गिरी और मर गई।

**सीख : मूर्खों को सीख देने का कोई लाभ नहीं होता। उल्टे सीख देने वाले को ही पछताना पड़ता है।**

# बंदर का कलेजा

एक नदी किनारे हरा-भरा विशाल पेड़ था। उस पर खूब स्वादिष्ट फल उगे रहते। उसी पेड़ पर एक बंदर रहता था। बड़ा मस्त कलंदर। जी भरकर फल खाता, डालियों पर झूलता और कूदता-फांदता रहता। उस बंदर के जीवन में एक ही कमी थी कि उसका

अपना कोई नहीं था। मां-बाप के बारे में उसे कुछ याद नहीं था। न उसके कोई भाई था और न कोई बहन, जिनके साथ वह खेलता। उस क्षेत्र में कोई और बंदर भी नहीं था जिससे वह दोस्ती गांठ पाता। एक दिन वह एक डाल पर बैठा नदी का नजारा देख रहा था कि उसे एक लंबा विशाल जीव उसी पेड़ की ओर तैरकर आता नजर आया। बंदर ने ऐसा जीव पहले कभी नहीं देखा था। उसने उस विचित्र जीव से पूछा—"अरे भाई, तुम क्या चीज हो?"

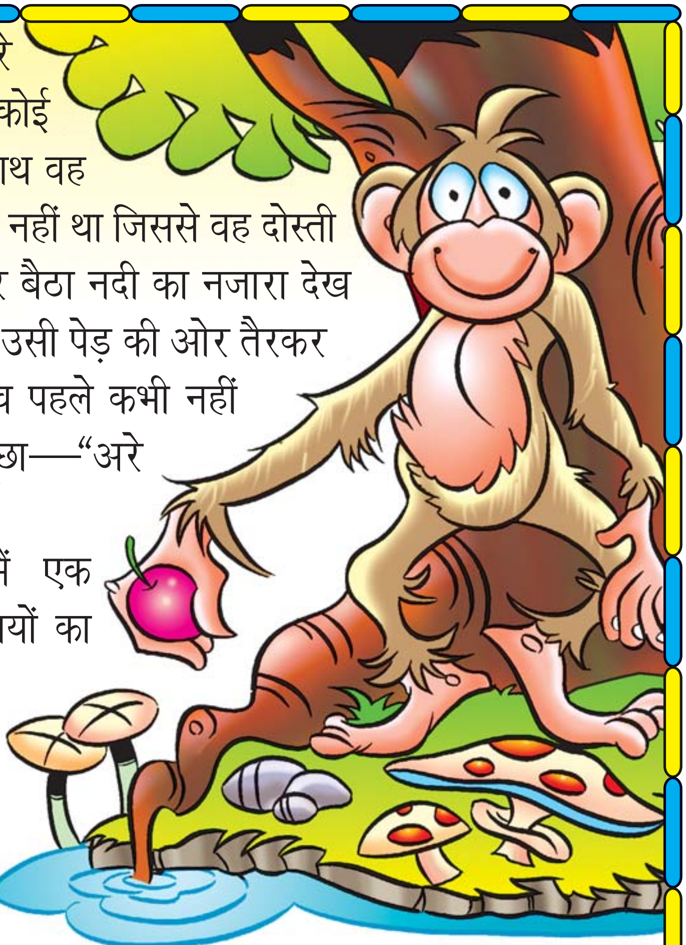

विशाल जीव ने उत्तर दिया—"मैं एक मगरमच्छ हूं। नदी में इस वर्ष मछलियों का अकाल पड़ गया है। बस, भोजन की

तलाश में घूमता-घूमता इधर आ निकला हूं।"

बंदर दिल का अच्छा था। उसने सोचा कि पेड़ पर इतने फल हैं, इस बेचारे को भी उनका स्वाद चखाना चाहिए। उसने एक फल तोड़कर मगर की ओर फेंका। मगर ने फल खाया। बहुत रसीला और स्वादिष्ट। वह फटाफट फल खा गया और आशा से फिर बंदर की ओर देखने लगा।

बंदर ने मुस्कराकर और फल फेंके। मगर सारे फल खा गया और अंत में उसने संतोष-भरी डकार ली और पेट थपथपाकर बोला—"धन्यवाद, बंदर भाई। खूब छक गया, अब

चलता हूं।” बंदर ने उसे दूसरे दिन भी आने का न्यौता दे दिया।

मगर दूसरे दिन आया। बंदर ने उसे फिर फल खिलाए। इसी प्रकार बंदर और मगर में दोस्ती जमने लगी। मगर रोज आता। दोनों फल खाते-खिलाते, गपशप मारते। बंदर तो वैसे भी अकेला रहता था। उसे मगर से दोस्ती करके बहुत प्रसन्नता हुई। उसका अकेलापन दूर हुआ। एक साथी मिला। दो मिलकर मौज-मस्ती करें तो दुगना आनन्द आता है।

एक दिन बातों-बातों में पता लगा कि मगर का घर नदी के दूसरे तट पर है, जहां उसकी पत्नी भी रहती है। यह जानते ही बंदर ने उलाहना

दिया—“मगर भाई, तुमने इतने दिन तक मुझे भाभीजी के बारे में नहीं बताया। मैं अपनी भाभी के लिए रसीले फल देता। तुम भी अजीब निखट्टू हो। अपना पेट भरते रहे और मेरी भाभी के लिए कभी फल लेकर नहीं गए।”

उस शाम बंदर ने मगर को जाते समय ढेर सारे फल चुन-चुनकर दिए। अपने घर पहुंचकर मगरमच्छ ने वह फल अपनी पत्नी मगरमच्छनी को दिए। मगरमच्छनी ने वह स्वाद भरे फल

खाए और बहुत संतुष्ट हुई। मगर ने उसे अपने मित्र के बारे में बताया। पत्नी को विश्वास न हुआ। वह बोली—"जाओ, मुझे बना रहे हो। बंदर की कभी किसी मगर से दोस्ती हुई है?"

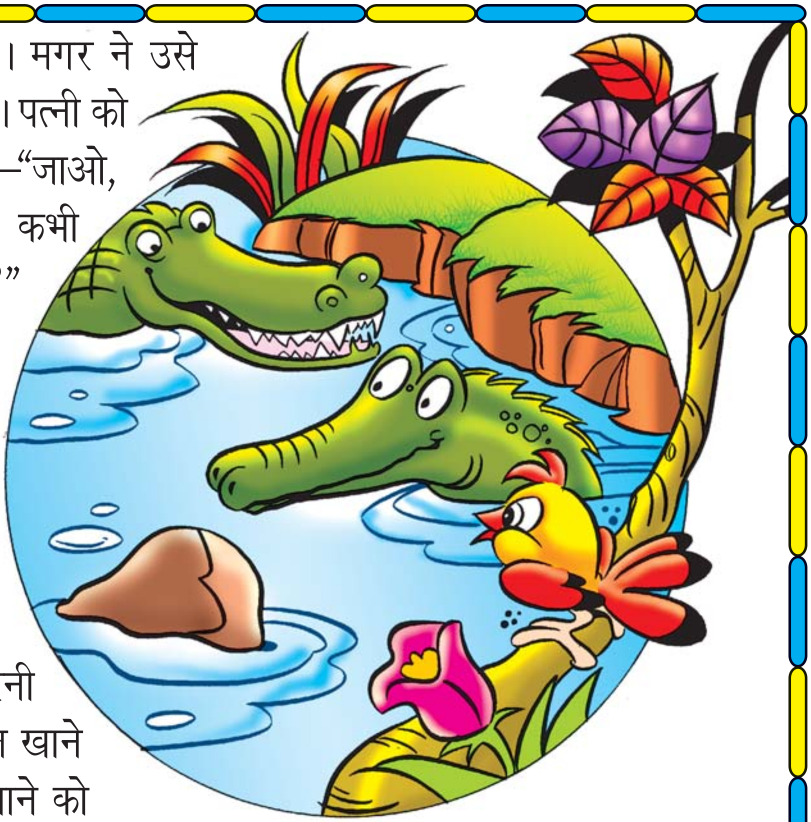

मगर ने यकीन दिलाया—"यकीन करो भाग्यवान! वर्ना सोचो यह फल मुझे कहां से मिले? मैं तो पेड़ पर चढ़ने से रहा।"

मगरनी को यकीन करना पड़ा। उस दिन के बाद मगरनी को रोज बंदर द्वारा भेजे फल खाने को मिलने लगे। उसे फल खाने को मिलते, यह तो ठीक था, पर मगर का बंदर से दोस्ती के चक्कर में दिन भर दूर रहना उसे खलने लगा। वह खाली बैठे-बैठे ऊंच-नीच सोचने लगी।

वह स्वभाव से कुछ दुष्टा थी। एक दिन उसका दिल मचल उठा—"जो बंदर इतने रसीले फल खाता है, उसका कलेजा कितना स्वादिष्ट होगा?" अब वह चालें सोचने लगी। एक दिन मगर शाम को घर आया तो उसने मगरनी को कराहते पाया। पूछने पर मगरनी बोली—"मुझे एक खतरनाक बीमारी हो गई है। वैद्यजी ने कहा है कि यह केवल बंदर का कलेजा खाने से ही ठीक होगी। तुम अपने उस मित्र बंदर का कलेजा ला दो।"

मगर सन्न रह गया। वह अपने मित्र को कैसे मार सकता है? न-न, यह नहीं हो सकता। मगर को इनकार में सिर हिलाते देखकर मगरनी जोर से हाय-हाय करने लगी—"तो फिर मैं मर जाऊंगी। तुम्हारी बला से और मेरे पेट में तुम्हारे बच्चे हैं। वे भी मरेंगे। हम सब मर जाएंगे। तुम अपने बंदर दोस्त के साथ खूब फल खाते रहना। हाय रे, मर गई...मैं मर गई।"

पत्नी की बात सुनकर मगर सिहर उठा। बीवी-बच्चों के मोह ने उसकी अक्ल पर पर्दा डाल दिया। वह अपने दोस्त से विश्वासघात करने, उसकी जान लेने चल पड़ा।

मगरमच्छ को सुबह-सुबह आते देखकर बंदर चकित हुआ। कारण पूछने पर मगर बोला—“बंदर भाई, तुम्हारी भाभी बहुत नाराज है। कह रही है कि देवरजी रोज मेरे लिए रसीले फल भेजते हैं, पर कभी दर्शन नहीं दिए। सेवा का मौका नहीं दिया। आज तुम न आए तो देवर-भाभी का रिश्ता खत्म। तुम्हारी भाभी ने मुझे सुबह-सुबह ही भगा दिया। अगर तुम्हें साथ न ले जा पाया तो वह मुझे भी घर में नहीं घुसने देगी।”

बंदर खुश भी हुआ और चकराया भी—“मगर मैं आऊं कैसे? मित्र, तुम तो जानते हो कि मुझे तैरना नहीं आता।”

मगर बोला—“उसकी तुम चिंता मत करो, मेरी पीठ पर बैठो। मैं ले चलूंगा न तुम्हें।”

बंदर मगर की पीठ पर बैठ गया। कुछ दूर नदी में जाने पर ही मगर पानी के अंदर गोता लगाने लगा। बंदर चिल्लाया—“यह क्या कर रहे हो? मैं डूब जाऊंगा।”

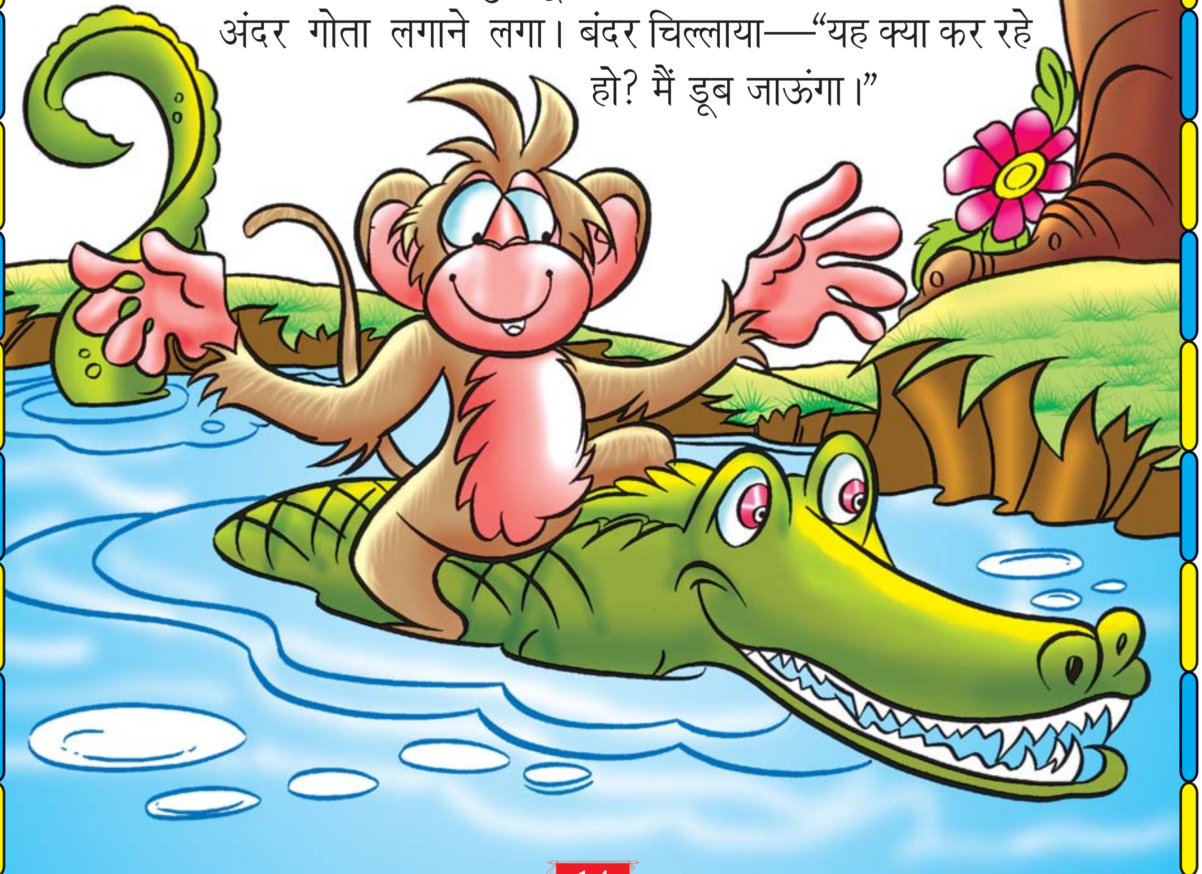

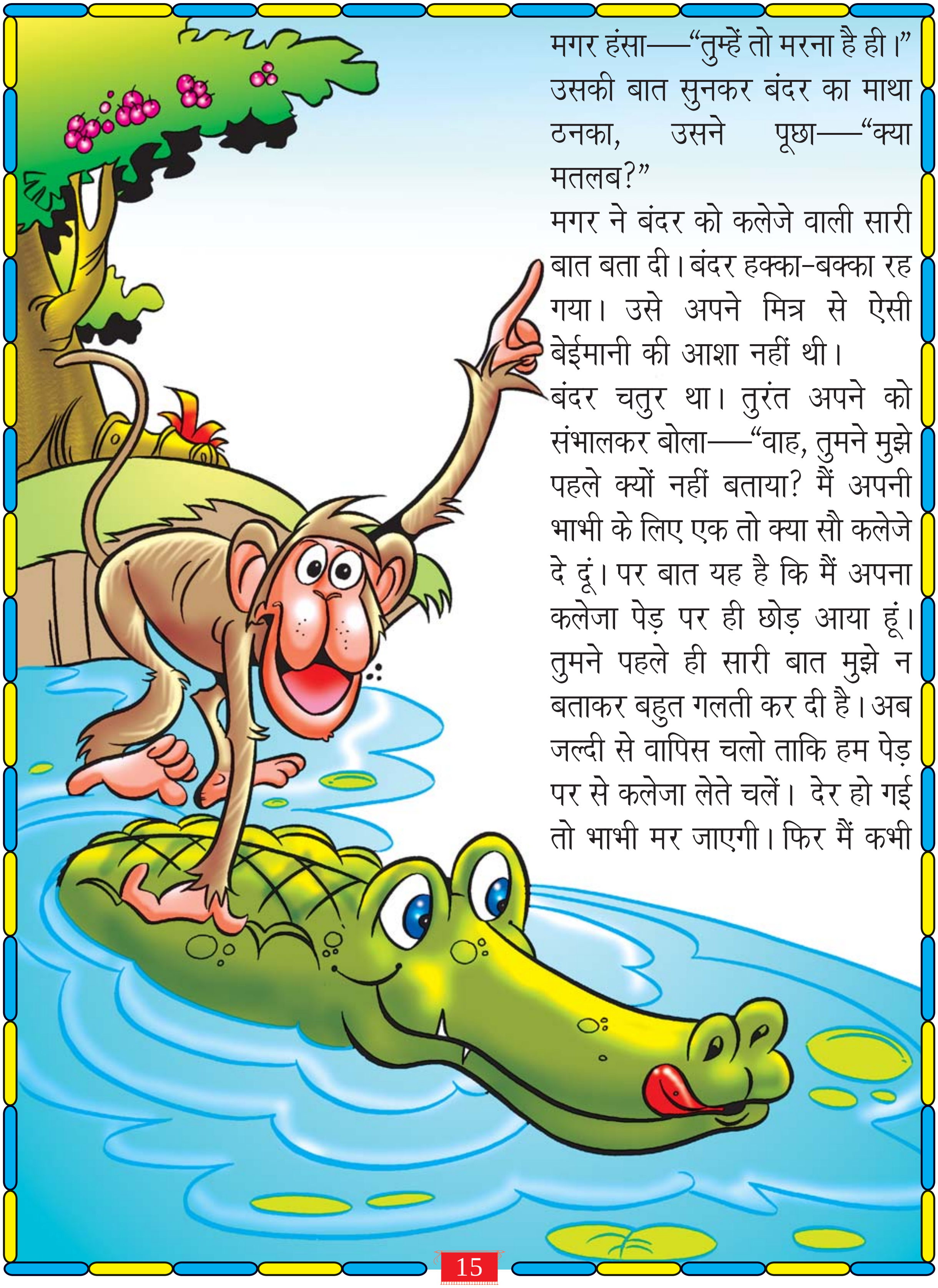

मगर हंसा—"तुम्हें तो मरना है ही।" उसकी बात सुनकर बंदर का माथा ठनका, उसने पूछा—"क्या मतलब?"

मगर ने बंदर को कलेजे वाली सारी बात बता दी। बंदर हक्का-बक्का रह गया। उसे अपने मित्र से ऐसी बेईमानी की आशा नहीं थी।

बंदर चतुर था। तुरंत अपने को संभालकर बोला—"वाह, तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया? मैं अपनी भाभी के लिए एक तो क्या सौ कलेजे दे दूं। पर बात यह है कि मैं अपना कलेजा पेड़ पर ही छोड़ आया हूं। तुमने पहले ही सारी बात मुझे न बताकर बहुत गलती कर दी है। अब जल्दी से वापिस चलो ताकि हम पेड़ पर से कलेजा लेते चलें। देर हो गई तो भाभी मर जाएगी। फिर मैं कभी

अपने आपको माफ नहीं कर पाऊंगा।" अक्ल का मोटा मगरमच्छ उसकी बात सच मानकर बंदर को लेकर वापस लौट चला। जैसे ही वे पेड़ के पास पहुंचे, बंदर लपककर पेड़ की डाली पर चढ़ गया और बोला—"मूर्ख, कभी कोई अपना कलेजा बाहर छोड़ता है? दूसरे का कलेजा लेने के लिए अपनी खोपड़ी में भी भेजा होना चाहिए। अब जा और अपनी दुष्ट बीवी के साथ बैठकर अपने कर्मों को रो।" ऐसा कहकर बंदर तो पेड़ की टहनियों में लुप्त हो गया और अक्ल का दुश्मन मगरमच्छ अपना माथा पीटता हुआ लौट गया।

**सीख : 1. दूसरों को धोखा देने वाला स्वयं धोखा खा जाता है।**

**2. मुसीबत की घड़ी में अक्ल से काम लेना चाहिए।**

# झगड़ालू मेढक

एक कुएं में बहुत से मेढक रहते थे। उनके राजा का नाम था गंगदत्त। गंगदत्त बहुत झगड़ालू स्वभाव का था। आसपास दो तीन और भी कुएं थे। उनमें भी मेढक रहते थे। हर कुएं के मेढकों का अपना राजा था। हर राजा से किसी न किसी बात पर गंगदत्त का झगड़ा चलता ही रहता था। वह अपनी मूर्खता से कोई गलत काम करने लगता और बुद्धिमान मेढक रोकने की कोशिश करता तो मौका मिलते ही अपने पाले गुंडे मेढकों से उसे पिटवा देता। कुएं के मेढकों में भीतर ही भीतर गंगदत्त के प्रति रोष बढ़ता जा रहा था। घर में भी झगड़ों से चैन न था। अपनी मेढकी को वह अपनी हर मुसीबत के लिए दोष देता।

एक दिन गंगदत्त पड़ोसी मेढक राजा से खूब झगड़ा। खूब तू-तू मैं-मैं हुई। गंगदत्त ने अपने कुएं में आकर बताया कि पड़ोसी राजा ने उसका अपमान किया है। अपमान का बदला लेने के लिए उसने अपने

मेढकों को आदेश दिया कि पड़ोसी कुएं पर हमला करें। सब जानते थे कि झगड़ा गंगदत्त ने ही शुरू किया होगा।

कुछ सयाने मेढकों तथा बुद्धिमानों ने एकजुट होकर एक स्वर में कहा——"राजन, पड़ोसी कुएं में हमसे दुगने मेढक हैं। वे हमसे स्वस्थ व अधिक ताकतवर हैं। हम यह लड़ाई नहीं लड़ेंगे।"

गंगदत्त सन्न रह गया और बुरी तरह तिलमिला गया। मन ही मन में उसने ठान ली कि इन गद्दारों को भी सबक सिखाना होगा। गंगदत्त ने अपने बेटों को बुलाकर भड़काया——"बेटा, पड़ोसी राजा ने तुम्हारे पिताश्री का घोर अपमान किया है। जाओ, पड़ोसी राजा के बेटों की ऐसी पिटाई करो कि वे पानी मांगने लग जाएं।"

गंगदत्त के बेटे एक दूसरे का मुंह देखने लगे। आखिर बड़े बेटे ने कहा——"पिताश्री, आपने कभी हमें टर्राने की इजाजत नहीं दी। टर्राने से ही मेढकों में बल आता है, हौसला आता है और जोश आता है। आप ही बताइए कि बिना हौसले और जोश के हम किसी की क्या पिटाई कर पाएंगे?"

अब गंगदत्त सबसे चिढ़ गया। एक दिन वह कुढ़ता और बड़बड़ाता कुएं से बाहर निकल इधर-उधर घूमने लगा। उसे पास ही बने अपने बिल में एक भयंकर नाग घुसता नजर आया। उसकी आंखें चमकी। जब अपने दुश्मन बन गए हों तो दुश्मनों को अपना बनाना चाहिए। यह सोच वह बिल के पास जाकर बोला——"नागदेव, मेरा प्रणाम।"

नागदेव फुफकारा—“अरे मेढक, मैं तुम्हारा वैरी हूं। तुम्हें खा जाता हूं और तू मेरे बिल के आगे आकर मुझे आवाज दे रहा है।”

गंगदत्त टर्राया—“हे नाग, कभी-कभी शत्रुओं से ज्यादा अपने दुख देने लगते हैं। मेरा अपनी जाति वालों और सगों ने इतना घोर अपमान किया है कि उन्हें सबक सिखाने के लिए मुझे तुम जैसे शत्रु के पास सहायता मांगने आना पड़ा है। तुम मेरी दोस्ती स्वीकार करो और मजे करो।”

नाग ने बिल से अपना सिर बाहर निकाला और बोला—“मजे, कैसे मजे?”

गंगदत्त ने कहा—“मैं तुम्हें इतने मेढक खिलाऊंगा कि तुम मुटाते-मुटाते अजगर बन जाओगे।”

नाग ने शंका व्यक्त की—“पानी में मैं जा नहीं सकता। कैसे पकडूंगा मेढक?”

गंगदत्त ने ताली बजाई—“नाग भाई, यहीं तो मेरी दोस्ती तुम्हारे काम आएगी। मैंने पड़ोसी राजाओं के कुओं पर नजर रखने के लिए अपने जासूस मेढकों से जमीन में गुप्त सुरंगें खुदवा रखी हैं। हर कुएं तक उनका रास्ता जाता है। सुरंगें जहां मिलती हैं, वहां एक कक्ष है। तुम वहां रहना और जिस-जिस मेढक को खाने के लिए कहूं, उन्हें खाते जाना।”

नाग गंगदत्त से दोस्ती के लिए तैयार हो गया, क्योंकि उसमें उसका लाभ ही लाभ था। एक मूर्ख बदले की भावना में अंधा होकर अपनों को दुश्मन के पेट के हवाले करने को तैयार हो तो दुश्मन क्यों न इसका लाभ उठाए?

नाग गंगदत्त के साथ सुरंग कक्ष में जाकर बैठ गया। गंगदत्त ने पहले सारे पड़ोसी मेढक राजाओं और उनकी प्रजाओं को खाने के लिए कहा। नाग कुछ ही सप्ताहों में सारे दूसरे कुओं

के मेढक सुरंगों के रास्ते जा-जाकर खा गया। जब सब समाप्त हो गए तो नाग गंगदत्त से बोला——"अब किसे खाऊं? जल्दी बता। चौबीस घंटे पेट फुल रखने की आदत पड़ गई है।" गंगदत्त ने कहा——"अब मेरे कुए के सभी सयानों और बुद्धिमान मेढकों को खाओ।" वह खाए जा चुके तो प्रजा की बारी आई। गंगदत्त ने सोचा——"प्रजा की ऐसी की तैसी। हर समय कुछ न कुछ शिकायत करती रहती है। उनको भी खाने के बाद नाग ने खाना मांगा तो गंगदत्त बोला——"नागमित्र, अब केवल मेरा कुनबा और मेरे मित्र बचे हैं। खेल खत्म और मेढक हजम।" नाग ने फन फैलाया और फुफकारने लगा——"मेढक, मैं अब कहीं नहीं जाने का। तू खाने का इंतजाम कर वर्ना हिस्स।"

गंगदत्त की बोलती बंद हो हो गई। उसने नाग को अपने मित्र खिलाए। फिर उसके बेटे नाग के पेट में गए। गंगदत्त ने सोचा कि मैं और मेढकी जिन्दा रहे तो बेटे और पैदा कर लेंगे। बेटे खाने के बाद नाग फुफकारा——"और खाना कहां है?" गंगदत्त ने डरकर मेढकी की ओर इशारा किया। गंगदत्त ने स्वयं के मन को समझाया——'चलो बूढ़ी मेढकी से छुटकारा मिला। नई जवान मेढकी से विवाह कर नया संसार रचाऊंगा।'

मेढकी को खाने के बाद नाग ने मुंह फाड़ा——"खाना।"

गंगदत्त ने हाथ जोड़े——"अब तो केवल मैं बचा हूं। तुम्हारा दोस्त गंगदत्त। अब लौट जाओ।"

नाग बोला——"तू ही कौन-सा मेरा मामा लगता है।" और उसे हड़प गया।

**सीख : अपनों से बदला लेने के लिए जो शत्रु के हाथों की कठपुतली बना, वह नष्ट हो गया।**

# रंग में भंग

एक बार जंगल में पक्षियों की आम सभा हुई। पक्षियों के राजा गरुड़ थे। सभी गरुड़ से असंतुष्ट थे। मोर की अध्यक्षता में सभा हुई। मोर ने भाषण दिया—"साथियो, गरुड़जी हमारे राजा हैं। पर मुझे यह कहते हुए बहुत दुख होता है कि उनके राज में हम पक्षियों की दशा बहुत खराब हो गई है। उसका कारण यह है कि गरुड़जी तो यहां से दूर विष्णु लोक में विष्णुजी की सेवा में लगे रहते हैं। हमारी ओर ध्यान देने का उन्हें समय ही नहीं मिलता। हमें अपनी समस्याएं लेकर फरियाद करने जंगली चौपायों के राजा सिंह के पास जाना पड़ता है। हमारी गिनती न तीन में रह गई है और न तेरह में। अब हमें क्या करना चाहिए, यही विचारने के लिए यह सभा बुलाई गई है।"

हुदहुद ने प्रस्ताव रखा—"हमें नया राजा चुनना चाहिए, जो हमारी समस्याएं हल करे और दूसरे राजाओं के बीच बैठकर हम पक्षियों को जीव जगत में सम्मान दिलाए।"

मुर्गे ने बांग दी—"कुकड़ूं कूं। मैं हुदहुदजी के प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।"
चील ने जोर की सीटी मारी—"मैं भी इससे सहमत हूं।"
मोर ने पंख फैलाए और घोषणा की—"तो सर्वसम्मति से तय हुआ कि हम नए राजा का चुनाव करें, पर किसे बनाएं हम राजा?"
सभी पक्षी एक दूसरे से सलाह करने लगे। काफी देर के बाद सारस ने अपना मुंह खोला—"मैं राजा पद के लिए उल्लूजी का नाम पेश करता हूं। वे बुद्धिमान हैं। उनकी आंखें तेजस्वी हैं। स्वभाव अति गंभीर है, ठीक जैसे राजा को शोभा देता है।"
हार्नबिल ने सहमति में सिर हिलाते हुए कहा—"सारसजी का सुझाव बहुत दूरदर्शितापूर्ण है। यह तो सब जानते हैं कि उल्लूजी लक्ष्मी देवी की सवारी हैं। उल्लू हमारे राजा बन गए तो हमारा दारिद्रय दूर हो जाएगा।"
लक्ष्मीजी का नाम सुनते ही सब पर जादू का सा प्रभाव हुआ। सभी पक्षी उल्लू को राजा बनाने पर राजी हो गए।
मोर बोला—"ठीक है, मैं उल्लूजी से प्रार्थना करता हूं कि वे कुछ शब्द बोलें।"
उल्लू ने घुघुआते हुए कहा—"भाइयो, आपने राजा पद पर मुझे बिठाने का जो निर्णय किया उससे मैं गद्‌गद हो गया हूं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मुझे आपकी सेवा करने का जो मौका मिला है, मैं उसका सदुपयोग करते हुए आपकी सारी समस्याएं हल करने का भरसक प्रयत्न करूंगा। धन्यवाद।"

पक्षीजनों ने एक स्वर में 'उल्लू महाराज की जय' का नारा लगाया।

कोयलें गाने लगी। चील जाकर कहीं से मनमोहक डिजाइन वाला रेशम का शॉल उठाकर ले आई। उसे एक डाल पर लटकाया गया और उल्लू उस पर विराजमान हुए। कबूतर जाकर कपड़ों की रंगबिरंगी लीरें उठाकर लाए और उन्हें पेड़ की टहनियों पर लटकाकर सजाने लगे। मोरों की टोलियां पेड़ के चारों ओर नाचने लगी।

मुर्गों व शुतुरमुर्गों ने पेड़ के निकट पंजों से मिट्टी खोद-खोदकर एक बड़ा हवनकुंड तैयार किया। दूसरे पक्षी लाल रंग के फूल ला-लाकर कुंड में ढेरी लगाने लगे। कुंड के चारों ओर आठ-दस तोते बैठकर मंत्र पढ़ने लगे।

बया चिड़ियों ने सोने व चांदी के तारों से मुकुट बुन डाला तथा हंस मोती लाकर मुकुट में फिट करने लगे। दो मुख्य तोते पुजारियों ने उल्लू से प्रार्थना की—"हे पक्षी श्रेष्ठ, चलिए लक्ष्मी मंदिर चलकर लक्ष्मीजी का पूजन करें।"

निर्वाचित राजा उल्लू तोते पंडितों के साथ लक्ष्मी मंदिर की ओर उड़ चले।

उनके जाने के कुछ क्षण पश्चात ही वहां कौआ आ निकला। चारों ओर जश्न का सा माहौल देखकर वह चौंका। उसने पूछा—"भाई, यहां किस उत्सव की तैयारी हो रही है?"

पक्षियों ने उल्लू के राजा बनने की बात बताई। कौआ चीखा—"मुझे सभा में क्यों नहीं बुलाया गया? क्या मैं पक्षी नहीं?"

मोर ने उत्तर दिया—"यह जंगली पक्षियों की सभा है। तुम तो अब जाकर अधिकतर कस्बों व शहरों में रहने लगे हो। तुम्हें हमसे क्या वास्ता?"

कौआ उल्लू के राजा बनने की बात सुनकर जल-भुन गया था। वह सिर पटकने लगा और कां-कां करने लगा—"अरे, तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है, जो उल्लू को राजा बनाने लगे? वह चूहे खाकर जीता है और यह मत भूलो कि उल्लू केवल रात को बाहर निकलता है। अपनी समस्याएं और फरियाद लेकर किसके पास जाओगे? दिन में तो वह मिलेगा नहीं।"

कौए की बातों का पक्षियों पर असर होने लगा। वे आपस में कानाफूसी करने लगे कि शायद उल्लू को राजा बनाने का निर्णय कर उन्होंने गलती की है। धीरे-धीरे सारे पक्षी वहां से खिसकने लगे। जब उल्लू लक्ष्मी पूजन कर तोतों के साथ लौटा तो सारा राज्याभिषेक स्थल सूना पड़ा था। उल्लू घुघुआया—"सब कहां गए?"

उल्लू की सेविका खंडरिच पेड़ पर से बोली—"कौआ आकर सबको उल्टी पट्टी पढ़ा गया। सब चले गए। अब कोई राज्याभिषेक नहीं होगा।"

उल्लू चोंच पीसकर रह गया। राजा बनने का सपना चूर-चूर हो गया। तब से उल्लू कौओं का वैरी बन गया और देखते ही उस पर झपटता है।

**सीख : कइयों में दूसरों के रंग में भंग डालने की आदत होती है और वे उम्रभर की दुश्मनी मोल ले बैठते हैं।**

# मक्खीचूस गीदड़

जंगल में एक गीदड़ रहता था। वह बड़ा कंजूस था। क्योंकि वह एक जंगली जीव था इसलिए हम रुपए-पैसों की कंजूसी की बात नहीं कर रहे। वह कंजूसी अपने शिकार को खाने में करता। जितने शिकार से दूसरा गीदड़ दो दिन काम चलाता, वह उतने ही शिकार को सात दिन तक खींचता। जैसे उसने एक खरगोश का शिकार किया। पहले दिन वह एक ही कान खाता। बाकी बचाकर रखता। दूसरे दिन दूसरा कान खाता। ठीक वैसे जैसे कंजूस व्यक्ति पैसा घिस-घिसकर खर्च करता है। गीदड़ अपने पेट की कंजूसी करता। इस चक्कर में वह प्रायः भूखा रह जाता। इसलिए दुर्बल भी बहुत हो गया था।

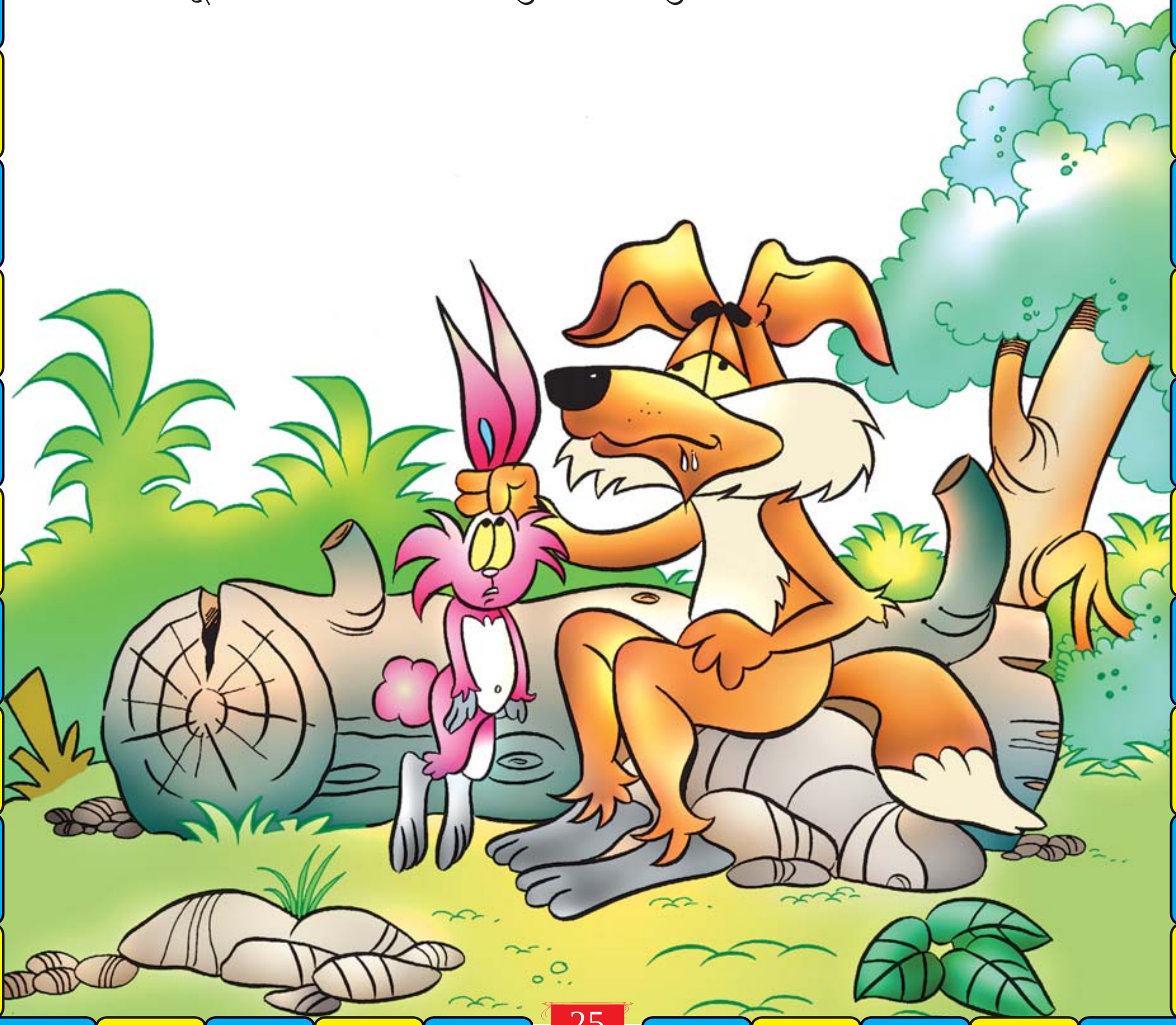

एक बार उसे एक मरा हुआ बारहसिंगा हिरण मिला। वह उसे खींचकर अपनी मांद में ले गया। उसने पहले हिरण के सींग खाने का फैसला किया ताकि मांस बचा रहे। कई दिन वह बस सींग चबाता रहा। इस बीच हिरण का मांस सड़ गया और वह केवल गिद्धों के खाने लायक रह गया। इस प्रकार मक्खीचूस गीदड़ प्रायः हंसी का पात्र बनता। जब वह बाहर निकलता तो दूसरे जीव उसका मरियल-सा शरीर देखते और कहते—"वह देखो, मक्खीचूस जा रहा है।"

पर वह परवाह न करता। कंजूसों में यह आदत होती ही है। कंजूसों की अपने घर में भी खिल्ली उड़ती है, पर वह इसे अनसुना कर देते हैं।

उसी वन में एक दिन एक शिकारी शिकार की तलाश में आया। उसने एक सुअर को देखा और निशाना लगाकर तीर छोड़ा। तीर जंगली सुअर की कमर को बींधता हुआ शरीर में घुसा। क्रोधित सुअर शिकारी की ओर दौड़ा और उसने खच्च से अपने नोकीले दांत शिकारी के पेट में घोंप दिए। शिकार और शिकारी दोनों मर गए।

तभी वहां मक्खीचूस गीदड़ आ निकला। वह खुशी से उछल पड़ा। शिकारी व सुअर के मांस को कम से कम दो महीने चलाना है। उसने हिसाब लगाया।

"रोज थोड़ा-थोड़ा खाऊंगा।" वह बोला।

तभी उसकी नजर पास ही पड़े धनुष पर पड़ी। उसने धनुष को सूंघा। धनुष की डोर कोनों पर चमड़ी की पट्टी से लकड़ी से बंधी थी। उसने सोचा—"आज तो इस चमड़ी की पट्टी को खाकर ही काम चलाऊंगा। मांस खर्च नहीं करूंगा। पूरा बचा लूंगा।"

ऐसा सोचकर वह धनुष का कोना मुंह में डाल पट्टी काटने लगा। ज्यों ही पट्टी कटी, डोर छूटी और धनुष की लकड़ी पट से सीधी हो गई। धनुष का कोना चटाक से गीदड़ के तालू में लगा और उसे चीरता हुआ उसकी नाक तोड़कर बाहर निकला। मक्खीचूस गीदड़ वहीं मर गया।

**सीख : अधिक कंजूसी का परिणाम अच्छा नहीं होता।**

# गजराज व मूषकराज

प्राचीन काल में एक नदी के किनारे बसा नगर व्यापार का केन्द्र था। फिर आए उस नगर के बुरे दिन, जब एक वर्ष भारी वर्षा हुई। नदी ने अपना रास्ता बदल दिया। लोगों के लिए पीने का पानी न रहा और देखते ही देखते नगर वीरान हो गया। अब वह जगह केवल चूहों के लायक रह गई। चारों ओर चूहे ही चूहे नजर आने लगे। चूहों का पूरा साम्राज्य ही स्थापित हो गया। चूहों के उस साम्राज्य का राजा बना मूषकराज चूहा।

चूहों का भाग्य देखो, उनके बसने के बाद नगर के बाहर जमीन से एक पानी का स्रोत फूट पड़ा और वह एक बड़ा जलाशय बन गया। नगर से कुछ ही दूर एक घना जंगल था। जंगल में अनगिनत हाथी रहते थे। उनका राजा गजराज नामक एक विशाल हाथी था।

उस जंगल क्षेत्र में एक वर्ष भयानक सूखा पड़ा। जीव-जन्तु पानी की तलाश में इधर-उधर मारे-मारे फिरने लगे। भारी भरकम शरीर वाले हाथियों की तो दुर्दशा हो गई। हाथियों के बच्चे

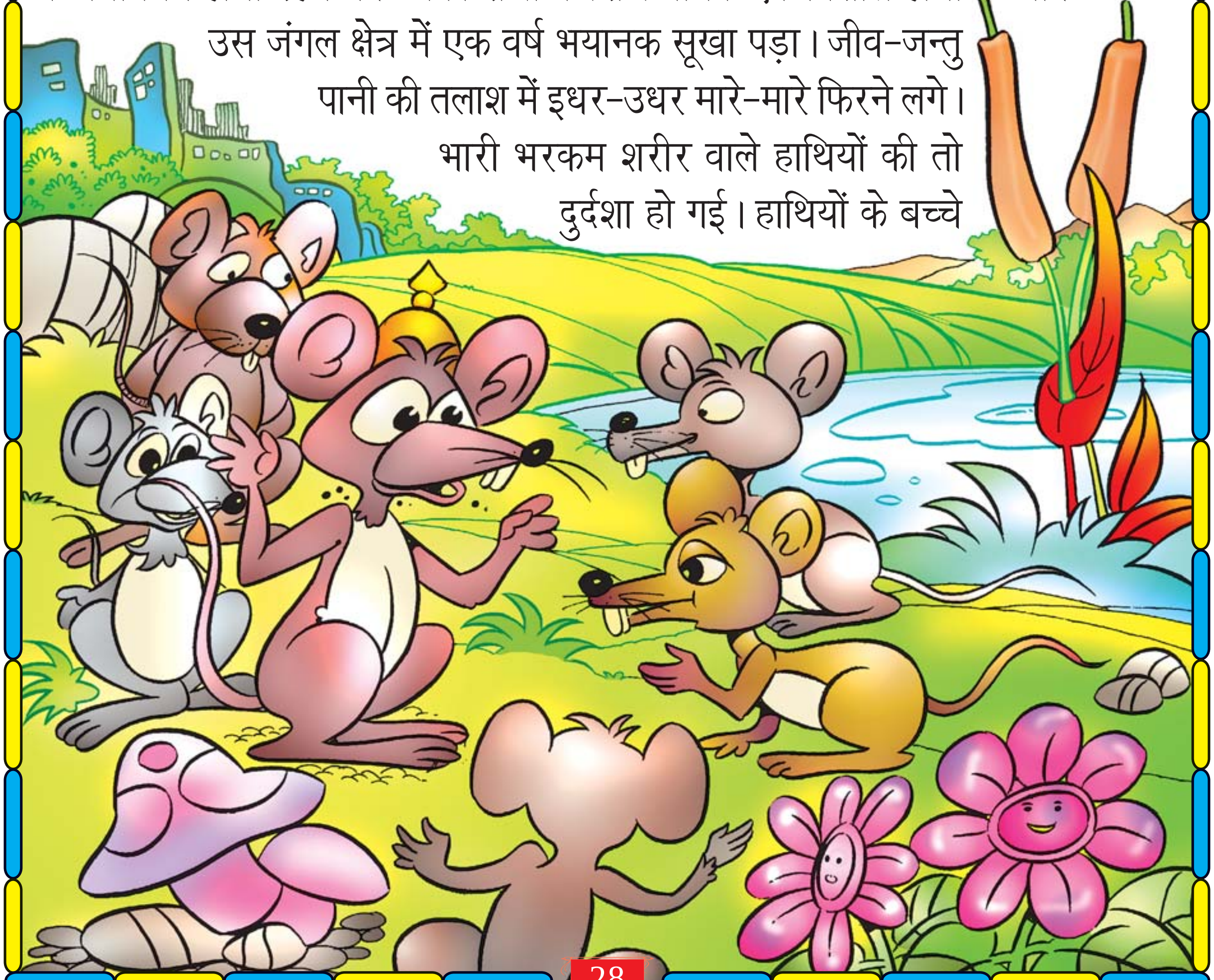

प्यास से व्याकुल होकर चिल्लाने व दम तोड़ने लगे। गजराज खुद सूखे की समस्या से चिंतित था और हाथियों का कष्ट जानता था। एक दिन गजराज की मित्र चील ने आकर खबर दी कि खंडहर बने नगर के दूसरी ओर एक जलाशय है।

गजराज ने सबको तुरंत उस जलाशय की ओर चलने का आदेश दिया। सैकड़ों हाथी प्यास बुझाने डोलते हुए चल पड़े। जलाशय तक पहुंचने के लिए उन्हें खंडहर बने नगर के बीच से गुजरना पड़ा।

हाथियों के हजारों पैर चूहों को रौंदते हुए निकल गए। हजारों चूहे मारे गए। खंडहर नगर की सड़कें चूहों के खून-मांस के कीचड़ से लथपथ हो गईं।

मुसीबत यहीं खत्म नहीं हुई। हाथियों का दल फिर उसी रास्ते लौटा। हाथी रोज उसी मार्ग से पानी पीने जाने लगे। काफी सोचने-विचारने के बाद मूषकराज के मंत्रियों ने कहा——"महाराज, आपको ही जाकर गजराज से बात करनी चाहिए। वह दयालू हाथी है।"

मूषकराज हाथियों के वन में गया। एक बड़े पेड़ के नीचे गजराज खड़ा था। मूषकराज उसके सामने के बड़े पत्थर के ऊपर चढ़ा और गजराज को नमस्कार करके बोला——"गजराज को मूषकराज का नमस्कार। हे महान हाथी, मैं एक निवेदन करना चाहता हूं।"

आवाज गजराज के कानों तक नहीं पहुंच रही थी। दयालु गजराज उसकी बात सुनने के लिए नीचे बैठ गया और अपना एक कान पत्थर पर चढ़े मूषकराज के निकट ले जाकर

बोला—"नन्हे मियां, आप कुछ कह रहे थे। कृपया फिर से कहिए।"

मूषकराज बोला—"हे गजराज, मुझे चूहा कहते हैं। हम बड़ी संख्या में खंडहर बनी नगरी में रहते हैं। मैं उनका राजा मूषकराज हूं। आपके हाथी रोज जलाशय तक जाने के लिए नगरी के बीच से गुजरते हैं। हर बार उनके पैरों तले कुचले जाकर हजारों चूहे मरते हैं। यह मूषक संहार बंद न हुआ तो हम नष्ट हो जाएंगे।"

गजराज ने दुख भरे स्वर में कहा—"मूषकराज, आपकी बात सुनकर मुझे बहुत शोक हुआ। हमें ज्ञान ही नहीं था कि हम इतना अनर्थ कर रहे हैं। हम नया रास्ता ढूंढ़ लेंगे।"

मूषकराज कृतज्ञता भरे स्वर में बोला—"गजराज, आपने मुझ जैसे छोटे जीव की बात ध्यान से सुनी। आपका धन्यवाद। गजराज, कभी हमारी जरूरत पड़े तो याद जरूर कीजिएगा।"

गजराज ने सोचा कि यह नन्हा जीव हमारे भला किस काम आएगा। सो उसने केवल मुस्कराकर मूषकराज को विदा किया। कुछ दिन बाद पड़ोसी देश के राजा ने सेना को मजबूत बनाने के लिए उसमें हाथी शामिल करने का निर्णय लिया। राजा के लोग हाथी पकड़ने के लिए आए। जंगल में आकर वे चुपचाप कई प्रकार के जाल बिछाकर चले जाते। सैकड़ों हाथी पकड़ लिए गए।

एक रात हाथियों के पकड़े जाने से चिंतित गजराज जंगल में घूम रहे थे कि उनका पैर सूखी पत्तियों के नीचे छल से दबाकर रखे रस्सी के फंदे में फंस गया। जैसे ही गजराज ने पैर आगे बढ़ाया रस्सा कस गया। रस्से का दूसरा सिरा एक पेड़ के मोटे तने से मजबूती से बंधा था। गजराज चिंघाड़ने लगा। उसने अपने सेवकों को पुकारा, लेकिन कोई नहीं आया। कौन फंदे में फंसे हाथी के निकट आएगा?

एक युवा जंगली भैंसा गजराज का बहुत आदर करता था। जब वह भैंसा छोटा था तो एक बार वह एक गड्ढ़े में जा गिरा था। उसकी चिल्लाहट सुनकर गजराज ने उसकी जान बचाई थी।

चिंघाड़ सुनकर वह दौड़ा और फंदे में फंसे गजराज के पास पहुंचा। गजराज की हालत देख उसे बहुत धक्का लगा। वह चीखा——"यह कैसा अन्याय है? गजराज, बताइए क्या करूं? मैं आपको छुड़ाने के लिए अपनी जान भी दे सकता हूं।"

गजराज बोले——"बेटा, तुम बस दौड़कर खंडहर नगरी जाओ और चूहों के राजा मूषकराज को सारा हाल बताना। उससे कहना कि मेरी सारी आस टूट चूकी है।"

भैंसा अपनी पूरी शक्ति से दौड़ा-दौड़ा मूषकराज के पास गया और सारी बात बताई। मूषकराज तुरंत अपने बीस-तीस सैनिकों के साथ भैंसे की पीठ पर बैठा और वो शीघ्र ही गजराज के पास पहुंचे। चूहे भैंसे की पीठ पर से कूदकर फंदे की रस्सी कुतरने लगे। कुछ ही देर में फंदे की रस्सी कट गई व गजराज आजाद हो गए।

**सीख : आपसी सद्भाव व प्रेम सदा एक दूसरे के कष्टों को हर लेते हैं।**

# विष्णुरूपी जुलाहा

किसी नगर में एक बढ़ई और एक जुलाहा रहते थे, जो परस्पर घनिष्ठ मित्र थे। उनकी मित्रता बाल्यकाल से चली आ रही थी। एक बार नगर के एक मंदिर में देव-दर्शन के लिए मेला लगा। उस मेले में देश-देशांतरों से दर्शनार्थी आए और उनके साथ जीविका हेतु धन कमाने के लिए नट, नर्तक, गायक आदि भी आए। जुलाहा और बढ़ई मेले में भ्रमण कर रहे थे कि उन्होंने एक हथिनी पर सवार सर्वांगसुंदरी राजकन्या को देखा। राजकन्या का रूप देखकर जुलाहा मंत्र-मुग्ध-सा हो गया। वह उसकी ओर एकटक निहारता रहा। उसकी सुंदरता देखकर वह मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। उसका मित्र यह देखकर बहुत दुखी हुआ। वह किसी प्रकार उसको वहां से उठाकर अपने घर ले आया।

घर लाकर उसने उसका उपचार करवाया, जिसके कारण वह किसी प्रकार स्वस्थ हो गया। तब बढ़ई ने उससे पूछा—"तुम्हें सहसा क्या हो गया था, जो तुम मूर्च्छित हो गए थे?"

बढ़ई के प्रश्न के उत्तर में जुलाहे ने अपनी मनोव्यथा बता दी, किंतु साथ ही

उसने यह भी बता दिया कि राजकन्या उसकी पहुंच से बाहर है और वह उसके बिना जीवित नहीं रह सकता। यह सुनकर बढ़ई ने उसे आश्वस्त किया और कहा—"मित्र! तुम चिंता मत करो। मैं आज रात्रि को ही उसके साथ तुम्हारी भेंट करा सकता हूं।"

बढ़ई ने उसी समय काठ का एक गरुड़ तैयार किया जो मंत्र द्वारा चलता था। फिर उसने जुलाहे को विष्णु की भांति सजाया और बोला—"मित्र! रात्रि के समय इस गरुड़ पर बैठकर, विष्णु का वेश धारण कर तुम राजकन्या से मिलने उसके शयनकक्ष में पहुंच जाना।"

जुलाहे ने वैसा ही किया। राजकन्या के शयनकक्ष में पहुंचकर जब उसने कहा वह साक्षात विष्णु है और अपनी पत्नी लक्ष्मी को क्षीरसागर में छोड़कर उससे मिलने के लिए आया है तो राजकन्या ने कहा—"पर मैं तो एक मानुषी हूं देव! भगवान के साथ मेरा कैसा संबंध?"

बात बिगड़ती देखकर जुलाहे ने कहा—"रूपवती! तुम नहीं जानती कि तुम राधा नाम की मेरी उस समय की प्रेमिका हो जब मैंने कृष्ण का अवतार लिया था। अब तुमने इस राजकुल में जन्म लिया है तो मैं तुमसे मिलने के लिए यहीं चला आया हूं।"

राजकन्या का संशय दूर हो गया। उसने कहा—"भगवन्! यदि यह सत्य है तो मुझे बड़ी प्रसन्नता है। फिर भी, आप मेरे पिता से निवेदन कीजिए, उनको भी बड़ी प्रसन्नता होगी।"

विष्णुरूपी जुलाहा बोला—"राजकन्या! मैं साधारण मनुष्य की दृष्टि में नहीं आ सकता। तुम मेरे साथ गंधर्व विवाह करो, अन्यथा मैं तुम्हारे समस्त राजकुल को भस्म कर दूंगा।"

जुलाहे की बात सुनकर राजकुमारी ने सहमति में सिर हिलाया। इस प्रकार रात्रि-भर जुलाहा वहां रहा और राजकन्या से मीठी-मीठी बातें करने

लगा। उस दिन से वह नित्यप्रति उस राजकन्या के साथ आनंद का समय व्यतीत करता रहा। राजकन्या के व्यवहार में इससे परिवर्तन आने लगा। राजभवन के अंतःपुरस्थ कर्मचारियों को इससे कुछ संदेह होने लगा। कुछ और समय बीत जाने पर जब अपने संदेह की पुष्टि होती दिखाई दी तो उन्होंने महाराज से इस विषय में बात की। यह सुनकर राजा को चिंता होने लगी। उसने रानी को इस विषय में बताया तो उसको भी चिंता होने लगी। वह तुरंत राजकुमारी के पास गई और जब देखा कि पुत्री की मुखाकृति महाराज के कथन की पुष्टि करती है तो वह क्रोधित होकर अपनी पुत्री से कहने लगी—"अरी कुलक्षिणी! तुमने यह क्या करना आरंभ कर दिया है? कौन है वह, किसकी मौत आई है, जो रात के अंधकार में तेरे कक्ष में प्रवेश करता है?"

क्रोधित माता को लज्जित मुख से राजकन्या ने बताया कि रात को साक्षात विष्णु भगवान उसके शयनकक्ष में आते हैं। यदि उसको विश्वास न हो तो वे खिड़की से रात्रि के समय उनको देख सकती हैं, किंतु केवल छिपकर। रानी को अपनी कन्या की बात पर विश्वास हो गया और वह संतुष्ट होकर राजा के पास लौट गई। राजा ने जब यह सुना तो उसे बहुत आश्चर्य हुआ। रात्रि में साक्षात विष्णु भगवान के दर्शन की उत्सुकता में राजा-रानी बहुत बेचैन हो गए। जैसे-तैसे करके रात आई तो भोजन आदि से निवृत्त होकर राजा-रानी अपनी बेटी के शयनकक्ष की खिड़की के निकट

आकर बैठ गए। अर्द्धरात्रि के पूर्व ही उन्होंने देखा कि आकाश से गरुड़ पर सवार भगवान विष्णु उनकी बेटी के शयनकक्ष के द्वार पर उतर रहे हैं। यह देखकर उनकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। राजा सोचने लगा कि जिसकी कन्या के साथ साक्षात भगवान ने गंधर्व विवाह कर लिया हो इससे बढ़कर इस कलिकाल में और कौन भाग्यशाली हो सकता है। इतना विचार करते ही राजा को घमंड होने लगा और उसने निरंकुश रूप से शासन चलाना आरंभ कर दिया। सीमावर्ती राजाओं ने देखा कि राजा की मनमानी बढ़ती जा रही है तो उन्होंने मिलकर उस पर आक्रमण कर दिया। शत्रुओं द्वारा आक्रमण की बात जब राजा ने सुनी तो उसे कोई विशेष चिंता न हुई। उसने रानी से कहा—"अपनी पुत्री को कहो कि भगवान विष्णु से कहे कि इस युद्ध में हमारी सहायता करें।"

रानी अपनी पुत्री के पास पहुंची और बोली—"बेटी! तुम्हारे जैसी कन्या व भगवान विष्णु जैसे जमाता के होते हुए हम पर शत्रु राजा आक्रमण कर रहे हैं। तुम आज रात को भगवान से कहना कि वे अपनी शक्ति से हमारे शत्रुओं का विनाश कर दें।"

उस रात्रि को जब विष्णु रूपी जुलाहा आया तो राजकुमारी ने उसको उसी प्रकार कह दिया जैसा उसकी माता ने समझाया था। विष्णुरूपी जुलाहे ने राजकन्या को सांत्वना देते हुए कहा—"सुभगे! शत्रुओं को संपूर्ण रूप से नष्ट करने के बाद ही अब मैं अन्न-जल ग्रहण करूंगा। तुम जाकर अपने पिता से कह दो कि वे प्रातःकाल होते ही अपनी विशाल सेना के साथ शत्रु से जाकर युद्ध करें। मैं आकाश में रहकर उनके समस्त शत्रुओं को निस्तेज कर दूंगा।"

जुलाहे के ऐसे वचन सुनकर राजपुत्री ने जाकर सारा वृत्तांत अपने पिता को सुना दिया। पुत्री की बात सुन राजा बहुत प्रभावित हुआ और प्रातः होते ही अपनी विशाल सेना को लेकर शत्रुओं से युद्ध करने के लिए निकल पड़ा। उधर जुलाहा भी मरने का निश्चय करके अपना चक्र लेकर, गरुड़ पर चढ़कर आकाश मार्ग से युद्ध करने के लिए चल दिया। त्रिकालदर्शी

भगवान से यह सब कहां छिपा रहता? उन्होंने अपने वाहन गरुड़ से कहा—"पक्षीराज! क्या तुम्हें मालूम है कि जुलाहा हमारा रूप धारण कर किस प्रकार राजकन्या को ठग रहा है?"

"जानता हूं प्रभु, पर क्या किया जा सकता है?"

"जुलाहा मरने के लिए प्रतिबद्ध होकर आज युद्धभूमि में गया है। यह तो निश्चित है कि शत्रुओं के बाणों द्वारा आज उसका प्राणांत हो जाएगा। तब सारी प्रजा यही कहेगी कि क्षत्रिय सेना के बाणों से गरुड़ और भगवान दोनों ही पराजित हो गए हैं। इस अपवाद के प्रसारित होते ही लोग हमारी पूजा करना बंद कर देंगे, अतः उचित यही रहेगा कि हम दोनों जुलाहे और उसके गरुड़ के शरीर में प्रविष्ट होकर अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए राजा के शत्रुओं का विनाश करें।" और वही हुआ। राजा के शत्रुओं को पराजय का मुंह देखना पड़ा। उधर, जुलाहे ने जब यह सब देखा कि राजा की विजय हो गई है तो वह आकाश मार्ग से नीचे उतरकर राजा के पास आया। जुलाहे ने आरंभ से लेकर अंत तक का सारा वृत्तांत राजा को यथावत् सुना दिया। जुलाहे का साहस देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सभी प्रजाजनों के सामने राजकन्या का विवाह उस जुलाहे के साथ कर दिया। पुरस्कारस्वरूप कई ग्राम भी राजा ने उसे दे दिए। तब से वह जुलाहा उस राजकन्या के साथ सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगा।

**सीख : कभी भी किसी के साथ छल-कपट नहीं करना चाहिए वरना मुसीबतों में फंस सकते हैं।**

# भाग्य का फल

किसी नगर में सागर दत्त नाम का एक वैश्य रहता था। उसके लड़के ने एक बार सौ रुपए में बिकने वाली एक पुस्तक खरीदी। उस पुस्तक में केवल एक श्लोक लिखा था—'जो वस्तु जिसको मिलने वाली होती है, वह उसे अवश्य मिलती है। उस वस्तु की प्राप्ति को विधाता भी नहीं रोक सकता। जो वस्तु दूसरों को मिलने वाली होगी, वह हमें नहीं मिल सकती और जो हमें मिलने वाली है, वह दूसरों को नहीं मिल सकती।'

अपने पुत्र से पुस्तक का मूल्य जानकर सागर दत्त कुपित हो गया। उसने तुरंत अपने पुत्र से घर छोड़कर चले जाने के लिए कहा। सागर दत्त का पुत्र अपमानित होकर घर से निकल पड़ा। वह एक नगर में पहुंचा। लोग जब उसका नाम पूछते तो वह अपना नाम 'प्राप्तव्य-अर्थ' ही बतलाता। कुछ दिनों बाद नगर में एक उत्सव मनाया गया। नगर की राजकुमारी चंद्रावती अपनी सहेली के साथ उत्सव की शोभा देखने निकली। जब वह नगर का भ्रमण कर रही

थी तो किसी देश का राजकुमार उसे भा गया। वह तुरंत अपनी सहेली से बोली—"सखी! जैसे भी हो, इस राजकुमार से मेरा परिचय कराओ।"

राजकुमारी की सहेली तत्काल उस राजकुमार के पास पहुंची व बोली—"मुझे राजकुमारी चंद्रावती ने आपके पास भेजा है। आप तुरंत उनके पास न गए तो वे मर जाएंगी।"

इस पर राजपुत्र ने कहा—"यदि ऐसा है तो बताओ कि मैं उनके पास किस समय व किस प्रकार पहुंच सकता हूं।"

राजकुमारी की सहेली बोली—"रात्रि के समय उसके शयनकक्ष में एक मजबूत रस्सी लटकी हुई मिलेगी, आप उस पर चढ़कर राजकुमारी के कक्ष में पहुंच जाना।"

राजकुमार रात्रि की प्रतीक्षा करने लगा, किंतु रात हो जाने पर कुछ सोचकर उस राजपुत्र ने राजकुमारी के कक्ष में जाना एकाएक स्थगित कर दिया। संयोग से वैश्य पुत्र 'प्राप्तव्य-अर्थ' उधर से ही निकल रहा था। उसने रस्सी लटकी देखी तो वह उस पर चढ़कर राजकुमारी के कक्ष में पहुंच गया। राजपुत्री ने उसे राजकुमार समझ उसका खूब स्वागत-सत्कार किया।

वैश्यपुत्र के स्पर्श से रोमांचित होकर उस राजकुमारी ने कहा—"मैं आपके दर्शन मात्र से ही अनुरक्त होकर आपको अपना दिल दे बैठी हूं। अब आपको छोड़कर किसी और को पति रूप में वरण नहीं करूंगी।"

वैश्यपुत्र कुछ नहीं बोला। वह शांत बैठा रहा। इस पर राजकुमारी ने कहा—"आप मुझसे बोल क्यों नहीं रहे हैं? क्या बात है?"

तब वैश्यपुत्र बोला—"मनुष्य प्राप्तक वस्तु को प्राप्त कर ही लेता है।"

यह सुनकर राजपुत्री को संदेह हो गया। उसने तत्काल उसे अपने शयनकक्ष से बाहर भगा दिया। वैश्यपुत्र एक बार फिर सड़क पर आ गया। तभी उसे सामने से आती एक बारात दिखाई दी। वह उस बारात में शामिल होकर उनके साथ-साथ चलने लगा। बारात अपने स्थान पर जा पहुंची, उसका खूब स्वागत-सत्कार हुआ। विवाह का मुहूर्त होने पर सेठ की कन्या सज-धजकर विवाह-मंडप के समीप आई। उसी क्षण एक मदमस्त हाथी अपने महावत को मारकर भागता हुआ उधर आ पहुंचा। वहां भगदड़ मच गई। कन्या उस स्थान पर अकेली रह गई। कन्या को भयभीत देखकर 'प्राप्तव्य-अर्थ' ने उसे सांत्वना दी—"डरो मत। मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा।" यह कहकर वह हाथ में एक डंडा लेकर हाथी पर पिल पड़ा। हाथी सहमकर वहां से भाग निकला। हाथी के चले जाने पर वर अपनी बारात के साथ वापस लौटा, किंतु अब सेठ की बेटी उससे शादी करने को तैयार न थी।

इस प्रकार वर व कन्या पक्ष में विवाद बढ़ गया और रात्रि भी बीत गई। प्रातःकाल वहां भीड़ एकत्र हो गई। इस विवाद की बात सुनकर राजकुमारी के साथ स्वयं राजा भी वहां चला आया। उसने वैश्यपुत्र से कहा—"युवक! तुम निश्चिंत होकर मुझे सारी बात बताओ।"

वैश्यपुत्र ने कहा—"मनुष्य प्राप्तव्य अर्थ को ही प्राप्त करता है।"

यह सुनकर राजपुत्री बोली—"विधाता भी उसको नहीं रोक सकता।"

यह सुनकर विवाह-मंडप में आई सेठ की कन्या बोली—"जो वस्तु मेरी है, वह दूसरों की नहीं हो सकती।"

राजा के लिए यह सब पहेली बन गया था। उसने दोनों कन्याओं से पृथक-पृथक सारी बात सुनी और जब वह आश्वस्त हो गया तो उसने सबको अभयदान दिया। उसने अपनी कन्या को एक हजार ग्रामों के साथ आदरपूर्वक 'प्राप्तव्य-अर्थ' को समर्पित कर दिया। इतना ही नहीं उसने उस वैश्यपुत्र को अपना पुत्र भी मान लिया और युवराज पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। दोनों कन्याओं से विवाह कर वैश्यपुत्र आनंदपूर्वक महल में रहने लगा। बाद में उसने अपने समस्त परिवार को भी वहां बुला लिया।

**सीख : मनुष्य प्राप्तव्य अर्थ को प्राप्त कर ही लेता है।**